IJAER/September-October 2024/Volume-13/Issue-4 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) Impact Factor:7.06

''मूल अधिकारों का दार्शनिक स्वरूप और न्यायिक प्रणाली की वर्तमान प्रांसगिकता''

डॉ0 गृहशोभा
प्रधानाध्यापिका
प्राथमिक विद्यालय तेहरा विकास खण्ड - अतरौली जनपद - अलीगढ़

शोध सारांश

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार प्रजातंत्र के आधार स्तम्भ है। वे उन परिस्थितियो ंका निर्माण करते है जिनके आधार पर बहुमत कि इच्छा निर्मित और क्रियान्वित होती है। भारतीय संविधान के भाग–3 अनुच्छेद 21 में उपबन्धित जीवन एवं वैयक्तिक स्वतंत्रता केमौलिक अधिकार के अन्तर्गत ऐसे जीवन यापन की अपेक्षा की गई है, जो न केवल मानवीयगरीमा के अनुकूल हो अपितु मानव जीवन के विकास से संबंधित सभी मूलभूत आवश्यकताओं संवेदनाओं तथा मूल्यों की परिपूर्ति करता हो। अनुच्छेद–21 शब्द जीवन को केवल प्राणों तक ही सीमित न रखकर इसका व्यापक अर्थान्वयन किया गया। अनुच्छेद 21 के अधीन ''जीवन केअधिकारों का यथार्थ रूप देने के लिये राज्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को गरीमापूर्ण जीवन बिताने के लिए न्यूनतम आवश्यकताएँ उपलब्ध कराये।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि लाके हितवाद की नई तकनीकी द्वारा महिलाओं बच्चो ं दलित दीनहीन, असमर्थ एवं शोषित वर्ग के लोगों की समस्याओं का निदान, विभिन्न सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में हमारी न्यायप्रणाली ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। जीवन के ऐसे अनेक क्षेत्र है, जिसमें इन्होंने न्यायिक अनुतोष प्राप्त करना सम्भव नहीं था, लेकिन लोकहितवादों के माध्यम से न्याय प्रणाली के निर्णयों द्वारा लोगों को राहत दिलाने की सम्भावनायें बढ़ गई है।

लोकहित की न्यायिक कार्यवाही ने भारत में सामाजिक न्याय की क्रान्ति के लिये अनुकूल वातावरण तैयार कर दिया है, जो कि निश्चित ही एक प्रगतिशील कदम है। इस दृष्टि से वे प्रजातंत्र के लिए अनिवार्य है उनके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास के लिए उन आधारभूत स्वतंत्रताओं और स्थितियों की व्यवस्था की जाती है। जिनके बिना उचित रूप से नागरिक जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता है। जीव्एनव्जोशी ने इस संबंध में लिखते है, ''एक स्वतंत्र प्रजातंत्रात्मक देश में मौलिक अधिकार, सामाजिक, धार्मिक और नागरिक जीवन के प्रभावदायक उपयोग के एक मात्र साधन है इन अधिकारों के बिना प्रजातंत्रात्मक सिद्धांत लागू नहीं हो सकते ओर सदैव बहुमत के अत्याचार का भी भय बना रहता है। मौलिक अधिकार नागरिकां` को न्याय और उचित व्यवहार की सुरक्षा प्रदान करते ळे एवं राज्य के बढ़ते हुए हस्तक्षेप तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता के बीच सन्तुलन स्थापित करते है।''[1]

बीजक शब्द :– मौलिक अधिकार, प्रजातंत्रात्मक, अनुच्छेद, सामाजिक, राजनीतिक, न्यायालय

स्वाधीनता आदि।

प्रस्तावना :–

भारतीय संविधान का सामाजिक दर्शन उस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु न्यायपालिका

को एक आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार किया है। मूल अधिकारों को दार्शनिक स्वरूप मुख्यतः जनसामान्य की पीड़ा एवं निराशा को दूर करने का प्रयास किया गया है। आज जब न्यायपालिका संवैधानिक परिधि में रहकर जनसाधारण की असुविधाओं को दूर करने का प्रयास कर रही है, तो उसे 'न्यायिक सक्रियता' की संज्ञा दी गयी है। भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के उद्देश्य का` प्राप्त करने हेतु भारतीय न्याय व्यवस्था मे ं कुछ आमूल परिवर्तन किये गये ताकि समाज के सभी वर्गों को न्याय के समान अवसर उपलब्ध हो सके तथापि इस दिशा में सन् 1960 एवं सन् 1970 के दशक में भारत की न्याय व्यवस्था में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। उसने न्यायपालिका का आकार–प्रक्रिया व्यवहार क्षेत्राधिकार और विशेष रूप से उसका लक्ष्य ही बदल दिया। वर्तमान में न्यायप्रणाली का लक्ष्य व्यक्तिगत न्याय के साथ–साथ सामाजिक न्याय की स्थापना करना भी है। भारत विश्व का विशालतम लोकतांत्रिक देश है, लोकतंत्र व्यवस्था मे शासन संचालन के मुख्यतः तीन स्तम्भ अपनी निर्धारित सीमाओ ं के अधीन रहकर अपने दायित्वों का निर्वाह करते है। इसलिए लोकतंत्रीय व्यवस्था सुचारू रूप से संचालित हाते ी है। इनमे ं यदि काइ र्ं एक स्तम्भ भी अमर्यादित आचरण करता है। तो लोकतन्त्रीय व्यवस्था चरमरा जाती है। अतः परम्परागत न्याय प्रणाली लोगों के त्वरित और सुलभ न्याय दिलाने में असफल रही। इसलिए भारत की बदलती हुई

वर्तमान सामाजिक, आर्थिक, परिस्थितियो ं को ध्यान मे ं रखते हुये, यह अनुभव किया गया कि परम्परागत रूढ़िवादी न्यायिक प्रक्रिया की जटिलता तथा तकनीकी को उदार बनाकर एक एसे ी नई व्यवस्था अपनाई, जिसमे ं प्रत्येक व्यक्ति के लिये न्याय प्रदान करना आसान हो गया ओर न्यायपालिका के प्रति लोगों का विश्वास बदल गया। इस दिशा में 80 के दशक में आशा की एक नयी किरण दिखायी दी जब न्यायपालिका ने सक्रिय होकर मानव की गरिमा, स्वतंत्रता एवं सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिये परम्परागत न्याय प्रणाली मे ं ''सुने जाने के अधिकारी'' संबंधी नियम को उदार बनाते हुए जनसाधारण को लोकहितवादों द्वारा न्याय दिलाना भी प्रारम्भ किया उन्होंने महत्वपूर्ण निर्णयों को अपनी परम्परावादी सीमा से बाहर निकालकर जनहित में लोगों को न्याय प्रदान किया जो उनकी न्यायिक सक्रियता का परिचायक है। जनसाधारण का` लोकहित के प्रकरणो ं में न्याय दिलाने के लिए मुकदमे ं में व्यक्तिगत हित की अनिवार्यता का` समाप्त कर दिया ताकि काइ र्ं भी जनहित मे ं रूचि रखने वाला व्यक्ति या संगठन किसी सार्वजनिक समस्या के निवारणार्थ न्यायालय के समक्ष लोकहित में याचिका दायर कर सके इस प्रकार वर्तमान मे न्यायप्रणाली के स्वरूप ने न्यायिक सक्रियता का रूप लेकर समाज के दलित उपेक्षित एवं असहाय तथा साधनहीन लोगों को उचित न्याय की प्राप्ति प्रारम्भ हुई अतः विगत वर्षो ं मे ं यह पद्धति भारतीय न्याय प्रणाली मे ं पूर्णतः स्थापित हा` चुकी।

बीसवीं शताब्दी के राजनीतिक व सामाजिक जीवन में मानवाधिकारों की धारणा ने विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है, सभी मनुष्यां` का यह नैसर्गिक गुण है कि व` मानवीय अधिकारों के मामलो ं में समान रूप से जन्म लेते है। उसके व्यक्तित्व में निहित अधिकार, उसके नैतिक दावे होते है, ये नैतिक दावे उद्देश्य एवं अर्न्तनिहित है। इन स्वात्याधिकारों का मूलाधार मानवता ही एक अविभाज्य अंग है। कहीं–कहीं इन्हें लोकतंत्रीय अधिकार या मूल अधिकार भी कहते है। मूल अधिकार प्रत्येक? नागरिक का` अपने दायित्वो ं के निर्वहन करने पर भी जारे देता है। ताकि एक न्यायसंगत समाज की स्थापना हो सके।

मूलतः न्याय वह तत्व है जो सामंजस्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था एवं मानवीय गरिमापूर्ण समाज की स्थापना करता है। वर्तमान समय की आवश्यकताओं को देखते हुए न्याय की संकल्पना का` सामाजिक न्याय एव ं व्यक्तिगत न्याय की अवधारणा मे ं बाँटा जा सकता है, सामाजिक न्याय का संबंध समतावादी व लोक

कल्याणकारी विचारधारा से है। इस विचारधारा मे शक्तिशाली से कमजारे की रक्षा करना एक प्रमुख सिद्धान्त रहा है इसमे समानता और स्वतंत्रता का समन्वय एवं सामंजस्य बनाने का प्रयास किया जाता रहा है। जिसमें बंधुत्व की भावना एवं समाज मे सभी व्यक्तियों का सर्वांगीण विकास सम्भव होता है। लास्की के अनुसार, अधिकार जीवन की वे परिस्थितियाँ होती है जिनके बिना साधारणतः कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता।[2] बोसांके के शब्दो में, अधिकार वह माँग है जिसे समाज स्वीकार करता है और राज्य लागू करता है।[3] ग्रीन के अनुसार, अधिकार वह शक्ति है जिससे लोक कल्याण के लिए मांग की जाती है और मान्यता भी प्राप्त हो जाती है।[4]

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार केवल कागजी प्रतिज्ञाएं मात्र नहीं है। ये पूर्णरूप से वैधानिक अधिकार है आरै भारतीय संविधान मे न्यायालयों को आज्ञा दी है कि नागरिकों के मौलिक अधिकारों का हनन तो नही हो रहा है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत कहा गया कि नागरिक अपने अधिकारों की रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालय कि शरण ले सकता है और व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के ऐसे कानून और कार्य को न्यायपालिका अवैधानिक घोषित कर देगी जो मौलिक अधिकारों को अनुचित रूप से प्रतिबन्धित करती है। भारतीय संविधान में प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण संवैधानिक अधिकारों के उपचारों की व्यवस्था की गयी है, ये मूल अधिकार सभी को समान रूप से प्राप्त है। मूल अधिकारों का संरक्षक न्यायपालिका को बनाया गया है। इन अधिकारों के द्वारा सरकार की निरंकुशता पर अंकुश लगाया गया है। राष्ट्र की सुरक्षा और समाज हित में मूल अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। मूल अधिकारों को भारत की परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर जीवनोपयोगी बनाया गया है। भारतीय संविधान मे वर्णित मूल अधिकार किन्ही विशेष परिस्थितियों मे निलम्बित किये जा सकते है।

मूल अधिकारों का दार्शनिक स्वरूप :–

अधिकार सामाजिक जीवन की उन दशाओं को कहा जाता है जिनके बिना मनुष्य प्रायः अपना पूर्णतः विकास नहीं कर सकता है अतः व्यक्ति को पूर्ण विकास के लिए जो अधिकार नितान्त आवश्यक है, उन्हें ही हम मौलिक अधिकार कहते है। आधुनिक युग में प्रायः सभी लिखित संविधानों में मौलिक अधिकारों का उल्लेख मिलता है। ये अधिकार संविधान द्वारा प्रत्याभूत होते है। डी०डी० बसु के अनुसार ''यह अधिकार सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से हमारे संविधान का आधारभूत सिद्धान्त है।[5] वर्थ के अनुसार, ''संवैधानिक आधार पर शासन के अन्य अभिकरणो के कार्यों को अवैधानिक घोषित करने की सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति को न्यायिक पुनरावलोकन कहते है।[6] ''पी०एन० भगवती'', के अनुसार ''विधिक व्यवस्था को बनाए रखना

न्यायपालिका का कर्त्तव्य है। विधि के शासन को सुरक्षित रखने के लिए सरकार के प्रत्येक अंग को अपनी शक्तियों की सीमाओं में रहकर कार्य करना चाहिए तथा कानून एवं संविधान द्वारा उन पर आरोपित दायित्वों को पूरा करना चाहिए।''[7]

भारत में मौलिक अधिकारों की मांग :–

मौलिक अधिकारों के विचारों का सूत्रपात सन् 1215 में इंग्लैण्ड के मैग्नाकार्टा से हुआ। भारत में मौलिक अधिकारों की घोषणा के लिए सबसे पहले सन् 1895 में मांग की गई।[8] गातेम रमेश प्रसाद भारत मे अंग्रेजी सरकार लोगों पर मुकदमा चलाए बिना उन्हें नजरबन्द कर देती थी। सरकार उन अत्याचारों की प्रतिक्रिया स्वरूप स्वाधीनता आन्दोलन के नेताओं ने प्रारम्भ से ही नागरिकों के मूल अधिकारों पर जोर

देना शुरू कर दिया था। दैहिक स्वतंत्रता, जीवन रक्षा के अधिकार आदि कुछ ऐसे अधिकार थे, जिन्हे ं धीरे–धीरे ब्रिटिश संसद ने भारतीय संविधान के संदर्भ में मान्यता दे दी। सन् 1915 में श्रीमति ऐनी बेंसेट द्वारा प्रवर्तित भारतीय संविधान विधेयक या 'होमरूल विधेयक' ने सर्वप्रथम मूल अधिकारों की मांग संबंधित प्रस्ताव रखा गया सन् 1925 में 'दि कॉमनवेल्थ ऑफ इण्डिया' मे ं मौलिक अधिकारो ं की भी घाष णा निहित थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सन् 1925 में 'मद्रास अधिवेशन' में एक संकल्प पारित कर निर्धारित किया कि भारत के भावी संविधान का आधार मूल अधिकारों की घोषणा होनी चाहिए। सर्वदल सम्मेलन द्वारा नियुक्त 'नेहरू समिति' (1928) ने जिस भावी संविधान की संस्तुति की थी, उसमें मौलिक अधिकार संबंधित प्रावधान निहित थे।[9] मार्च 1931 मे करांची अधिवेशन[10] में कांग्रेस ने मूल अधिकारों की मांग को दाहे रात ं हुए एक संकल्प मं ं कहा है कि ''स्वाधीन भारत के किसी भी संविधान का ं मौलिक अधिकारो ं की गारन्टी देनी चाहिए।'' इन अधिकारां ं में संगठन बनाने की स्वाधीनता, अभिव्यक्ति स्वतंत्रता एवं समाचार–पत्र निकालने की स्वाधीनता स्वतंत्र व्यवसाय तथा धर्म अपनाने की स्वाधीनता, लिंग के किसी बन्धन के बिना सभी नागरिकां ं के बराबर अधिकार और दायित्व वैयक्तिक स्वाधीनता आदि शामिल हाने ी चाहिए। सन् 1946 में ब्रिटिश कैबिनेट मिशन में इस बात को स्वीकार किया कि

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की लिखित गारण्टी देना आवश्यक है। कैबिनेट मिशन ने अन्य बातों के साथ–साथ मौलिक अधिकारों पर भी रिपोर्ट देने के लिए एक 'सलाहकार समिति' के गठन की सिफारिश की।[11]

मूल अधिकारों से असंगत विधियाँ :–

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 13 मूल अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियाँ शून्य होगी।[12] दूसरे शब्दों में, ये न्यायिक समीक्षा योग्य है। यह शक्ति उच्चतम न्यायालय के अनुच्छेद 32 और उच्च न्यायालयों के अनुच्छेद 226 को प्राप्त है, जो किसी विधि को मूल अधिकारों का उल्लघंन होने पर 8 गैर–संवैधानिक या अवैध घोषित कर सकते है। भारतीय संविधान मे ं वर्णित मूल अधिकारां ं से संबंधित प्रावधान निहित है।

(1) समता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18 तक)।

a) विधि के समक्ष समता एवं विधियों का समान संरक्षण (अनुच्छेद–14)।

b) धर्म, मूलवंश, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध (अनुच्छेद–15)।

c) लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनुच्छेद–16)।

d) अस्पृश्यता का अन्त और उनका आचरण निषिद (अनुच्छेद–17)।

e) सने ा या विद्या संबंधी सम्मान के सवे ाएँ सभी उपाधियां ं पर रोक (अनुच्छेद–18)।

(2) स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 से 22 तक)

(अ) छह अधिकारो ं की सुरक्षा – (1) वाक् एव ं अभिव्यक्ति, (2) सम्मेलन (3) संघ (4) संचरण **(5)** निवास (6) वृत्ति इत्यादि (अनुच्छेद–19)।

(ब) अपराधो ं के लिए दोष ा सिद्धि के सबं ंध ा मे ं संरक्षण (अनुच्छेद–21)।

(स) प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण (अनुच्छेद–21)।

(द) प्रारम्भिक शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद–21)।

(ड) कुछ दशाओ ं मे ं गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण (अनुच्छेद–22)।

(3) शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद–23 से 24)

(अ) बलात श्रम का प्रतिषेध (अनुच्छेद–23)।

(ब) कारखानो ं आदि मे ं बच्चां ं के नियोजन का प्रतिषेध (अनुच्छेद–24)।

(4) धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद–25 से 28)।

(अ) अन्तकरण की और धर्म के अबाध रूप से मानने आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद–25)।

(ब) धार्मिक कार्यो के प्रंबंध की स्वतंत्रता (अनुच्छेद–26)।

(स) किसी भी धर्म की अभिवृद्धि के लिए करा ं के संदाय के बारे मे ं स्वतंत्रता (अनुच्छेद–27)

(द) कुछ शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे मं ं स्वतंत्रता (अनुच्छदे –29 से 30) संवैधानिक उपचारो ं का अधिकार (अनुच्छेद–32) :– मूल अधिकारो ं के

प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय जाने का अधिकार इसमें शामिल याचिकाएं है। बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेक्षण, अधिकार पृच्छा इत्यादि। संवैधानिक उपचारों का अधिकार मूल अधिकारों की संवैधानिक घोषणा तब तक अर्थहीन तर्कहीन एवं शक्तिविहीन है, जब तक कि कोई प्रभावी मशीनरी उसे लागू करने के लिए न हो इस तरह अनुच्छेद 32 संवैधानिक उपचार का अधिकार प्रदान करता है। यह व्यवस्था मूल अधिकारों को वास्तविक बनाती है। डॉक्ट बीक्आरक्ट अम्बेडकर ने अनुच्छेद 32 को संविधान का सबसे महत्वपूर्ण अनुच्छेद बताया जिसके बिना संविधान अर्थहीन है – यह ''संविधान की आत्मा और ह्रदय''

है। उच्चतम न्यायालय अनुच्छेद 32 के तहत एवं उच्च न्यायालय 226 के तहत रिट जारी कर सकता है।[13] बन्दी प्रत्यक्षीकरण :– इसे लैटिन भाषा से लिया गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'को प्रस्तुत किया जाए'। इस प्रकार की रिट से अभिप्राय किसी भी व्यक्ति को जबरन हिरासत में रखने के विरूद्ध है। बन्दी प्रत्यक्षीकरण की रिट सार्वजनिक प्राधिकरण हो या व्यक्तिगत दोनों के खिलाफ जारी किया जा सकता है।

परमादेश :– इसका शाब्दिक अर्थ 'हम आदेश देते है' यह एक नियन्त्रित है, जिसे न्यायालय द्वारा सार्वजनिक अधिकारियों के लिए जारी किया जाता है। ताकि उनसे उनके कार्यों को करने ओर उसे नकारने के संबंध में पूछा जा सके। इसे किसी सार्वजनिक ईकाई, निगम, अधीनस्थ न्यायालयों प्राधिकार या सरकार के खिलाफ समान उद्देश्य के लिए जारी किया जा सकता है।
प्रतिषेध :– इसका शाब्दिक अर्थ 'रोकना' है। यह उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालो ं का ं या अधिकरणां ं का ं अपने न्यायक्षत्रे स ं उच्च न्यायिक कार्यों को करने से रोकने के लिए जारी किया जाता है।

उत्प्रेषण :– इसका शाब्दिक अर्थ 'प्रमाणित होना या सूचना देना' है। इसे एक उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों या अधिकरणों में लम्बित मामलों के स्थानान्तरण को सीधे या पत्र जारी कर दिया

जाता है। अधिकार पृच्छा :– न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति द्वारा सार्वजनिक कार्यालय में दायर अपने दावे की जाँच के लिए जारी किया जाता है। अतः यह किसी व्यक्ति द्वारा लोक कार्यालय के अवैध अनाधिका ग्रहण करने को रोकता है। इस प्रकार मौलिक अधिकारों द्वारा सामाजिक न्याय की व्यवस्था मुख्यतः नकारात्मक आधार पर की गई है। इसका अभिप्राय व्यक्ति अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए न्यायालय जा सकता था किसी न्यायालय द्वारा आम जनसाधारण के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करना उसके अधिकार क्षेत्र में आता है। भारत की शासन प्रणाली संघीय है, किन्तु न्यायापालिका एकीकृत है। इसका तात्पर्य है कि पूरे देश के लिए एक ही सर्वोच्च न्यायालय है, भारतीय न्यायपालिका का संगठन शंकु की आकृति का है। जिसके सर्वोच्च शिखर पर उच्चतम न्यायालय है। इस प्रकार न्यायमूर्ति पीव्एनव् भगवती ने न्यायिक सक्रियता को संवैधानिक आधार प्रदान किया। संविधान में इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख है, जिसमें राज्य सम्पर्ण देश के हित नागरिकां` के मौलिक अधिकारो ं को निलम्बित कर सके या उनके उपयोग पर प्रतिबन्ध लगा सके। ये प्रतिबन्धित अवस्थायें है –

(अ) प्रतिरक्षा के सदस्यों के सम्बन्ध मे ं (अनुच्छेद 33)

(ब) जब मार्शल लॉ लागू करने हो (अनुच्छेद 34)

(स) संविधान में संशोधन के द्वारा (अनुच्छेद 368)

(द) आपातकालीन घोषणा के अन्तर्गत (अनुच्छेद 352)

न्यायिक पुनरावलोकन न्यायालय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्ति है, यह व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के कार्यों की संवैधानिकता की जांच करती है। ईव्एसव् कारविन के मतानुसार ''न्यायिक पुनविलोकन न्यायालय की उस शक्ति से है, जो उन्हें अपने न्याय क्षेत्र के अन्तर्गत लागू होन` वाले व्यवस्थापित के कानूनो ं की वैधानिकता का निर्णय देने के संबंध में प्राप्त है जिन्हें वे वैध और व्यर्थ समझते है।''[14] न्यायिक पुनरावलोकन के सिद्धान्त का सर्वप्रथम प्रतिपादन अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश मार्शल ने 1803 में मारबरी बनाम मेडिसन नामक प्रसिद्ध मुकद्दमें में किया। भारत में सर्वप्रथम एव्केव् गोपालन बनाम मद्रास राज्यवाद 1950–51 में सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक पुनरावलोकन को संक्षिप्त करते हुए कहा कि भारत में संविधान सर्वोच्च है। न्यायापालिका के पास किसी कानून की संवैधानिकता का परीक्षण करने की शक्ति है। भारतीय संवैधानिक दर्शन में मूल अधिकार के महत्वपूर्ण पहलुओं में समानता, स्वतंत्रता एवं संवैधानिक उपचारों की सुरक्षा न्याय प्रणाली द्वारा करवाना। इन अधिकारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिकार अनुच्छेद 21में व्यक्तिगत स्वतंत्रता से सम्बन्धित है। सामान्यतः ऐसा माना जाता था कि मौलिक अधिकारां` में वर्णित जीवन का अधिकार संर्कीण है, परन्तु वर्तमान समय में यह मान्यता परिवर्तित हुई है, इसलिए न्यायपालिका द्वारा जीवन के अधिकार की व्याख्या अत्यन्त व्यापक रूप से की जाने लगी।

– मौहिनी जैन कसे मे ं प्राथमिक शिक्षा का अधिकार।

– स्तवतं सिंह कसे मे ं विदेश यात्रा का अधिकार।

– निकिता कसे मे ं गर्भ मे ं पल रहे बच्चे का अधिकार।

सामान्यत : ऐसा माना जाता था कि भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक

अधिकार संकीर्ण है, परन्तु वर्तमान समय में यह मान्यता परिवर्तित हुई है। इसलिए

न्यायपालिका द्वारा जीवन के अधिकार की व्याख्या अत्यन्त व्यापक रूप से की जाने लगी जिनका उल्लखे ा निम्न मामलो/वादां` मे ं किया गया है–

- हुसैन आरा केस मे ं विधिक सहायता का अधिकार।
- नरेन्द्र कुमार केस में आजीविका का अधिकार।
- गोविन्द केस मे ं गोपनीयता का अधिकार।
- शेरसिंह केस मे ं गोपनीयता का अधिकार।
- बघेश केस मे ं शुद्ध एव ं प्रदूषण मुक्त पानी का अधिकार।
- मुरली देवड़ा वाद में शुद्ध प्रदूषण मुक्त वायु आयु का अधिकार।
- विशाखा केस मे ं यौन उत्पीड़न के विरूद्ध अधिकार।
- पंजाब बनाम मोहिदर सिंह केस मे ं स्वास्थ्य का अधिकार।
- एमक्सीक् मोहिद सिंह केस मे ं स्वास्थ्य का अधिकार।
- मोहनी जैन केस मे ं प्राथमिक शिक्षा का अधिकार।
- सतवत सिंह केस में विदेश यात्रा का अधिकार।

संक्षेप में, वर्तमान में भारतीय न्याय प्रणाली के बदलते परिवेश ने न्यायिक सक्रियता से देश में विधि सम्मत शासन के स्थापना में पर्याप्त सहायता मिली है। लोकहित लोक अदालतां` तथा विधिक सवे ा आदि की व्यवस्था स` जनसाधारण को रास्ता एवं त्वरित न्याय प्राप्त होने का मार्ग प्रशस्त हुआ जो अपने आय में सराहनीय उपलब्धि है।

संदर्भ सूची

1. पायली, एमक्म्पीक् ''कॉस्टीटयूशन गवनेर्मेन्ट इन इण्डिया'', एसक्चन्द्र प्रकाशन नई दिल्ली 1986 पृष्ठ 50

2. त्रिपाठी प्रदीप, ''मानवाधिकार और भारतीय संविधान'', ''राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2002, पृष्ठ 14

3. नेमा, प्रोव्ह जेव्म्पीव्ह, ''भारतीय राजनीति विचारक'', यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण 2007, पृष्ठ 30

4. मेहता, बीव्ह्आरव्ह, ''भारतीय राजनीतिक चिन्तन के आधार'', प्रथम संस्करण 2015 मनोहर पब्लिकेशन 2013 पृष्ठ 19

5. प्रसाद, गोपाल ''लोकतंत्र एवं सामाजिक न्याय'', यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली पृष्ठ 171

6. गौतम, रमेश प्रसाद ''भारत में मानवाधिकार उल्लघंन, संरक्षण क्रियान्वयन एवं उपचार सागर विश्वविद्यालय प्रकाशन। पृष्ठ 173

7. जोशी आरव्म्पीव्ह ''मानव अधिकार और कर्त्तव्य'', एव्म्वीव्ह पब्लिकेशन अजमेर। पृव्म्सव्ह 211

8. लक्ष्मीकान्त, एमव्ह ''भारतीय राज व्यवस्था'', चतुर्थ संस्करण MC Graw Hill Education (India) Priviate Limited Near, Delhi pp 44

9. बसु डीव्म्डीव्ह कमेटी ऑन द कास्टीटयूशन ऑफ इण्डिया एनव्म्सीव्ह सरकार कलकत्ता 1965 पृष्ठ 99

10. एव्म्वीव्ह डायसी, ''द लॉ ऑफ दी ''कॉस्टीटयूशन (1961) पृष्ठ 70

11. आस्टिन ग्रेनविल, ''दी इण्डियन ''कॉस्टीटयूशन'' कॉनर स्टोन ऑफ ए नेशन ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस 1966 पृष्ठ 72

12. सईद, एसव्म्एमव्ह, ''भारतीय राजनीति व्यवस्था'', मयूर पब्लिकेशन, संस्करण 2018, पृष्ठ 32

13. मिश्रा, जय कुमार ''भारत का संविधान एक पुनः दृष्टि कल्याण पब्लिकेशन 2010 पृष्ठ 81

14. नारंग, एमव्ह्आरव्ह ''भारतीय शासन एवं राजनीति,'' गीताजंली पब्लिशिंग हाउस संस्करण 2013 पृष्ठ 13

15. पराजये, डॉव्ह नाव्मविव्ह लोकहितवाद विधिक सहायता एवं सेवा लोक अदालत, पब्लिकेशन, सेण्टल लॉ, प्रथम संस्करण पृष्ठ 08